International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 807-809

महिला सशक्तिकरण का 'भ्रम'

ऋचा सिंह
शोध छात्रा, सेन्टर फॉर गोल्वलाइजेशन एंड डेवलपमेंट स्टडीज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

वर्तमान समय में महिलासशक्तिकरण शब्द का प्रचलन बहुत तीव्र गति से बढ़ा है। लोग कहते हैं कि ये जमाना तो महिला सशक्तिकरण का है, तमाम राजनीतिक पार्टियाँ ये कहती हैं, की हमारा लक्ष्य तो महिला सशक्तिकरण है, कोई भी नीति बने और उसमें महिलायें भी शामिल हैं, तो वह नीति भी महिला सशक्तिकरण की नीति में शामिल हो जाती है। स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा सेवा या कल्याण से सम्बन्धित कोई सार्वजनिक सेवा का शुभारम्भ हो तो वह भी महिला शक्तिकरण की द्योतक हो जाती है, अब महिला सशक्तिकरण के लिये इतना कुछ हो रहा हो तो लोगों को भी लगने लगता है कि वास्तव में 'महिला सशक्तिकरण' तो हो रहा है और बस यही से निर्माण होता है 'सशक्तिकरण के भ्रम का', एक ऐसा भ्रम जो महिला मुक्ति एवं समानता की न तो बात करता है न ही हिमायत।

वास्तव में पिछले समय से या जब से सामाजिक मुद्दो की पहचान होनी शुरू हुई तब से महिला सशक्तिकरण का नारा या बातें इतनी सुनी की लगने लगा कि हम महिलायें तो बहुत बेहतर स्थिति में है, सशक्त हो चुकी हैं क्योंकि महिलायें पढ़ने लगी हैं, नौकरी करने लगी हैं, देश की प्रधानमंत्री भी महिला हो चुकी है, कई मुख्यमंत्री भी महिलायें है, प्रशासनिक क्षेत्र में भी है, खेलकूद में भी है, सानिया स्कर्ट पहनकर टेनिस खेल सकती तो, कर्णम मल्लेश्वरी वेट लिफ्टिंग करती है, थोड़े और प्राथमिक स्तर की बात करें तो अब लड़कियाँ सिर्फ शिक्षा ही नहीं हासिल करती, बल्कि हाईस्कूल, इण्टर के बोर्ड में भी टॉप करती है, और मेडिकल तथा इंजीनियरिंग की परीक्षाओं में भी अब लड़कियों का जलवा है। मतलब 'महिला सशक्तिकरण' तो हो रहा है? लेकिन ध्यान दे तो यह 'महिला सशक्तिकरण' क्या वास्तव में महिलाओं को सशक्त कर रहा है, क्योंकि आस–पास की और समाज की स्थिति महिलाओं के प्रतिकूल है, सर्वप्रथम तो महिलाओं को उनके बराबर का इंसान होने का हक ही प्राप्त नहीं है, न ही वो 'स्वास्थ' यानी भेदभाव से रहित वातावरण में, खुली हवा में साँस ले सकती हैं। क्योंकि सशक्तिकरण के वास्तविक मापकों एवं अर्थों को समझने का प्रयास किया जाये तो पता चलता है– सशक्तिकरण एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति प्रभावोत्पादकता प्राप्त करता है, और स्वयं पर नियन्त्रण करता है।

वास्तव में शक्तिकरण एक बहुआयामी धारणा है और उसका सम्बन्ध लोगों की सामाजिक समानता, आर्थिक एवं राजनीतिक सहभागिता से जुड़ा होता है। इसके साथ ही सशक्तिकरण एक सतत् प्रक्रिया है और इसकी कोई अंतिम सीमा नहीं (परन्तु ध्यान देने वाली बात है कि महिलाओं के लिये सशक्तिकरण की सीमा बहुत स्पष्ट रूप से निर्धारित है)।

महिला सशक्तिकरण की परिभाषा की हम बात करें तो, महिलाओं के लिये अवसरों की समानता, जीवन जीने के लिये समान दशायें, संसाधनों पर नियन्त्रण, सार्वजनिक स्थानों के उपयोग की समान दशायें, कार्य करने एवं जीवन जीने की समान दशायें, शक्ति हासिल करना, (भौतिक एवं वित्तीय दोनों प्रकार) आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में सहभागिता, महिलाओं के जीवन की गुणवत्ता निर्धारित करने वाले निर्णय लेने की क्षमताओं अर्थात् राइट टू च्वाइस, स्वतन्त्रता, स्वायत्ता पर बल देती है और इनमें से किसी भी शर्त को पूरा न होने पर सशक्तिकरण अधूरा माना जाता है।

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर अगर हम समाज में महिलाओं की स्थिति की तुलना करें तो बिना किसी जटिलता के हमें यह मालूम हो जायेगा की इनमें से अधिकांश अधिकार महिलाओं को प्राप्त नहीं है। उसे बुनियादी 'मानव अधिकार' अर्थात समान मानव होने का ही दर्जा प्राप्त नहीं है, बल्कि वह एक 'दोयम दर्जे' अर्थात् पुरूष इंसान से अलग महिला इंसान है, जिसे 'इंसान' नहीं बल्कि महिला के अधिकार प्राप्त है। (घर देखना, खाना पकाना, बच्चे पालना इत्यादि)।

महिला सशक्तिकरण का इतिहास

महिला सशक्तिकरण के इतिहास की बात करें तो सर्वप्रथम यूरोप में इसकी शुरूआत दो शताब्दी पहले हुई, जब 1792 में मेरी वोल्स्टन क्राफ्ट की पुस्तक 'ए विन्डिक्शन ऑफ द राइट्स ऑफ वूमेन' का प्रकाशन हुआ, जिसमें पहली बार मेरी वोलस्टन ने फ्रांस की क्रांति से प्रभावित होकर स्वातन्त्रता–समानता–भातृत्व के सिद्धांत को स्त्री समुदाय पर भी लागू करने की मांग की। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि कोई भी सामाजिक दर्शन तब तक वास्तविक अर्थों में समतावादी नहीं हो सकता, जब तक कि वह स्त्रियों को समान अधिकार व अवसर देने तथा उसकी हिफाजत के प्रति प्रतिबद्ध नहीं होता। बाद में स्त्री की इस मुक्ति की वकालत जॉन स्टुअर्ट मिल ने 1869 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'द सबजेक्शन ऑफ वूमेन' में की जिसे और मजबूत स्वर मिला। सिमोन द बोउवर की 1949 में प्रकाशित पुस्तक 'द सेकेण्ड सेक्स' से। इस तरह बाद के स्त्रीवाद विचारकों ने इसको स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और स्त्री मुक्ति स्त्री विकास एवं स्त्री सशक्तिकरण के स्वर प्रस्फुटित हुये।

इस तरह से सशक्तिकरण जो की स्त्री मुक्ति एवं स्त्री समानता की अवधारण से शुरू हुआ था वो धीरे–धीरे मात्र स्त्रियों को कुछ शिक्षित करने, कुछ स्वास्थ्य सुविधायें देने, कुछ रोजगार देने और विशेषकर, मात्र भूमण्डलकरण के लिये अच्छे उपभोक्ता बनाने तक सीमित होकर रह गया क्योंकि पूरी दुनिया भूमण्डलीकरण की संकल्पना एवं नीतियों को जब स्पष्ट रूप से अपना लिया, तब एक बात तो स्पष्ट हो गयी कि कुल आबादी की लगभग 48ः यानि

आधी आबादी को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता क्योंकि भूमण्डलीकरण को सुचारू रूप से चलाने के लिये उपभोक्ताओं की जरूरत है, जो कि महिलायें भी हैं, इसीलिये पूरी प्रक्रिया में चाहे वो उत्पादक हो या उपभोक्ता के रूप में महिलाओं को लेकर चलना ही होगा। परन्तु वास्तविक अर्थों में स्त्री समानता के लिये कोई दृढ़ संकल्प कदम नहीं उठाये गये और वैश्विक स्तर पर भी संयुक्त राष्ट्र संघ, जिसने महिला सशक्तिकरण के लिये तमाम नीतियों का निर्माण किया है। परन्तु वास्तविक असमानता को समाप्त करने के लिये कोई 'अनिवार्य नीति' नहीं बनायी, यहाँ तक की 'मिलेनियम डेवलवमेंट गोल' में जो 8 लक्ष्य निर्धारित किये, उसमें कहा गया है कि 'Pramoting Gender Equality and Empowering Women' पर 'कैसे'? वह इसकी बात नहीं करता और न ही सहस्त्राब्दिक विकास का लक्ष्य है,– महिलाओं की समान सहभागिता को सुनिश्चित करना तो इस तरह से चाहे वैश्विक स्तर हो या राष्ट्रीय स्तर पर महिला सशक्तिकरण के लिये मात्र सतही प्रयास किये गये लेकिन उसकी अनिवार्य शर्त समानता एवं संसाधनों पर हकदारी को पूरी तरह से छोड़ दिया गया है। जिसका परिणाम है, जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अपने मंच से स्वीकार भी किया है कि महिलायें विश्व जनसंख्या का लगभग 50ः और उत्पादक कार्यो में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, विशेषकर पूर्व उत्पादन के माध्यम से, वह Child Rearing and Child Bearing दोंनो का कार्य करती है, श्रमशक्ति का निर्माण करती है, परन्तु इतनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के बावजूद महिलायें एक सामान्य नागरिक का जीवन नहीं जीती, वह असानता एवं शोषणीय जीवन जीने को मजबूर है। वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट स्पष्ट करती है कि महिलायें कुल श्रम शक्ति का 2/3 भाग निर्वहन करती है परन्तु कुल आय का मात्र 10ः भाग प्राप्त करती है तथा कुल वैश्विक सम्पत्ति में मात्र 1ः की हिस्सेदारी है।

उपर्युक्त आंकड़े सशक्तिकरण की तस्वीर को स्पष्ट करते हैं, क्या इसके बाद भी हम यह स्वीकार करने की स्थिति में हैं कि 'महिला सशक्तिकरण' का दौर चल रहा है। यही सही है कि महिला साक्षरता का स्तर बढ़कर 65.46ः हो गया है, रोजगार में भी महिलाओं का प्रतिशत बढ़ रहा है, स्वास्थ्य स्थिति में सुधार हो रहा है, महिलाओं की औसत मृत्यु दर आयु में भी वृद्धि हो रही है, मातृ मृत्यु दर में कमी आयी है।

परन्तु दूसरी तरफ बाल लिंगानुपात का अंतर लगातार बढ़ता ही जा रहा है। आंकड़ों के अनुसार, भारत में महिला जनसंख्या का केवल 13.99ः भाग ही आर्थिक उत्पादन में वर्ष भर संलग्न रह पाता है, 80.23ः महिलायें 'नान वर्कस की श्रेणी में आती है, दूसरे शब्दों में कुल श्रम शक्ति का केवल 20.22ः भाग ही प्रमुख कार्यकर्ता के रूप में महिलायें हैं। अर्थात् स्पष्ट है कि महिलाओं के द्वारा किये जाने वाले काम को कार्य की श्रेणी में ही नहीं रखा जाता और अगर स्वास्थ्य के मोर्चे पर बात करें तो एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार लगभग 55ः महिलायें खून की कमी से जूझ रही है, लगभग 36 करोड़ महिलायें प्रजनन संबंधी रोगों से ग्रस्त है, जबकि लगभग 27 करोड़ महिलायें प्रीमेस्टुअल सिंड्रोम से पीड़ित है और महिलाओं में कैंसर की समस्या तेजी से बढ़ रहा तथा सबसे मुख्य आधी आबादी का बहुत बढ़ा हिस्सा मानसिक स्वास्थ्य की परेशानियों का सामना कर रहा है।

महिला हिंसा एवं उत्पीड़न की बात की जाये तो 'सशक्तिकरण' की असल सच्चाई नजर आती हैं जिसमें हम देखते हैं कि महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा चाहे वो बलात्कार के रूप में हो, छेड़खानी हो, दहेज हत्या, कार्यस्थल पर यौन शोषण हो, धार्मिक स्थल पर यौन शोषण हो या फिर तेजाब फेंकने की घटना है, इन सब में अत्यन्त तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। एक साल में लगभग 7.5ः की वृद्धि और इसमें रिपोर्ट न होने वाले केस जिनका प्रतिशत बहुत बड़ा है, वह शामिल ही नहीं है।

राजनीतिक प्रतिभागिता की बात करें तो शैक्षिक स्तर में वृद्धि के बावजूद महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी अत्यन्त कम है। 16वीं लोकसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व मात्र 12.15ः था वहीं 2017 के आंकड़ों के अनुसार राज्यसभा में मात्र 10.7ः है। इन आंकड़ों, स्थितियों का हम विश्लेषण करें और जरा भी इन पर ध्यान दे तो 'महिला सशक्तिकरण' के भ्रम' की तस्वीर पूरी तरह से स्पष्ट हो जाती है।

निष्कर्ष

यह सही है कि महिलाओं के विकास के लिहाज से विश्व में और भारत में भी प्रगति हुई है, स्थितियाँ पहले से कुछ बेहतर हुई है, परन्तु यह उपलब्धि सही मायनों में न वास्तविकता के धरातल के करीब है और न ही समान है। स्टेट जेंडर डेवलपमेंट रिपोर्ट 2005 तथा केन्द्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की रिपोर्ट 'जेंडरिंग ह्यूमन डेवलपमेंट इंडिसेज रिकास्टिंग द जेंडर टेवलपमेंट इंडेक्स एण्ड जेंडर इम्पावरमेंट फॉर इण्डिया 2009' में भी यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है, कि तमाम नीतियों एवं कार्यक्रमों के बावजूद 'महिला विकास एवं सशक्तिकरण का स्तर न तो संतोषजनक है, और न ही सभी राज्यों को इसका समान लाभ प्राप्त हुआ है, इस प्रकार की नीतियाँ कुछ राज्यों एवं क्षेत्रों तक ही सिमट कर रह गयी है। स्त्रियों ने निःसंदेह कुछ क्षेत्रों में अभूतपूर्व उपलब्धियाँ हासिल की है, परन्तु यह संख्या बहुत कम है, इसका भयावह पक्ष भी है, स्त्रियाँ चांद पर जा सकती है, हिमालय चढ़ सकती है, फिर भी अन्याय, शोषण, असमानता, अत्याचार, यौनाचार का शिकार है अर्थात् वह एक इंसान का जीवन अस्मितापूर्वक अपनी पहचान के साथ नहीं जी सकती यानि सामान्य स्त्री के लिये कोई जगह नहीं, सशक्त होना है, तो असामान्य होना पड़ेगा। भूमि के स्वामित्व, उत्पादन के संसाधनों पर नियंत्रण, सम्पत्ति स्वामित्व तथा निर्णय लेने की शक्ति पुरूषों के हाथों में होने के कारण महिलायें आज भी अधीनस्थ की स्थिति में है, जबकि सशक्त होने के लिए सबसे पहले समान स्थिति में होना आवश्यक है। आवश्यकता है, सर्वप्रथम ऐसा माहौल तैयार करने की, जो सर्वप्रथम उनकी दोयम दर्जे की नागरिकता पर प्रहार करता हो। वास्तविकता तो यह है कि जब तक महिलाओं से जुड़े बुनियादी सवाल हल नहीं होते जो (आज भी सामाजिक आर्थिक नीतियों एवं कार्यक्रमों की परिधि में नहीं है) तब तक महिला सशक्तिकरण सम्भव नहीं है। इसलिये जिस तरह से महिलाओं की स्थिति खराब एवं दोयम दर्जे की है, उसमें कुछ नीतियाँ एवं घोषणायें महिलाओं को छलने के सिवाय कोई काम नहीं करती। महिलाओं को रोजगार आज भी सरलता से नहीं मिल रहा, निजीकरण उन्हें रोजगार दे भी रहा है, तो भरपूर शोषण को बाद। जहाँ वे रोजगार करती है, वहाँ उन्हें न तो उचित मजदूरी दी जाती है न काम करने की न्यूनतम दशायें उपलब्ध करायी जाती है, साथ ही तमाम अधिकार जैसे संगठन व यूनियन बनाने के अधिकार से भी वंचित रखा जाता है।

सवाल यह है कि उपलब्धियों को गिनाकर हम इन जमीनी वास्तविकताओं से नहीं भाग सकते। आज भ्रूण हत्या, दहेज पर प्रतिबंधा, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर शोषण जैसे कितने ही कानून कयों न बन जायें, महिलाओं को सुरक्षित रखने के मामले में यह किसी भी नतीजे तक नहीं पहुँचते। क्या इन जमीनी हकीकतों को छोड़कर कुछ नीतियों, कार्यक्रमों एवं वित्तीय प्रबंधन से वास्तव में महिलाओं का सशक्तिकरण संभव है? हमें सशक्तिकरण की व्यापकता पर ध्यान देना होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी परिभाषा

में स्पष्ट रूप से कहा है कि सम्मान से जीने का अधिकार एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण, निर्णय लेने की क्षमता सशक्तिकरण के मूल घटक हैं। परन्तु आज भी महिलाओं को न तो सही मायने में सम्मान से जीने का अधिकार प्राप्त है न ही संसाधनों पर उनका कोई नियन्त्रण या हिस्सेदारी है। जेंडर बजटिंग, जिसमें की महिलाओं की आबादी एवं स्थिति की तुलना में बहुत कम राशि प्रावधानित की जाती है या कुछ आर्थिक नीतियाँ, जिनकी वित्तीय क्षमता सिर्फ एक पैबन्द के समान है 'महिला सशक्तिकरण' की संकल्पना को पूरा नहीं कर सकते। जरूरत है कि कानून, नीतियों एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यवस्था में परिवर्तन की, क्योंकि समस्या की जड़ को न पकड़कर इधर–उधर हाथ–पांव मारने से स्थितियों में कुछ विशेष बदलाव नहीं होगा। महिलाओं को संसाधनों से, जमीने से, मजदूरी से, सत्ता से, राजनीतिक भागेदारी से और संरचनात्मक परिस्थितियों से वंचित कर सशक्त नहीं बनाया जा सकता है। औरतों का एक बहुत छोटा हिस्सा बड़ी–बड़ी संस्थाओं, कम्पनियों, स्वयंसेवी संगठनों, सरकारी मंत्रालयों एवं विभागों में उँचे पदों पर प्रबंधक व चीफ बन गया है। अगर इसे ही हम नारी सशक्तिकरण का पर्याय मान लें तो स्थिति कुछ बेहतर दिखायी देती है, परन्तु ध्यान से देखने पर विसंगतियाँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। हमें समझना है कि क्या वर्तमान समय में यह तो कह सकते हैं कि महिलाओं के साक्षरता प्रतिशत में वृद्धि हो रही है, परन्तु इस पर विचार करना भी आवश्यक है कि क्या उसे महिला से पहले 'इंसान' होने का दर्जा दिला पा रही है या फिर उन बेड़ियों को ज्यादा से ज्यादा मजबूत करने का ही काम कर रही है, उनकी पारम्परिक भूमिका में ही उनका अस्तित्व तलाश रही है। 90 के दशक से महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में पर्याप्त स्थान देने की मांग जितनी तेजी से बढ़ रही है, उससे कहीं ज्यादा उसका विरोध बढ़ रहा है, जिसका नमूना हम अपनी संसद के अधिवेशनों तथा महिला आरक्षण बिल की चर्चा में देख सकते हैं।

सरकार कह सकती हैं कि पितृसत्तात्मक सरकार महिलाओं का सशक्तिकरण तो करना चाहती है पर सिर्फ उन्हें थोड़ी शिक्षा, थोड़ा रोजगार देकर न की सत्ता और समाज में समान सहभागिता देकर।

यदि राज्य, सरकार, समाज वास्तव में महिलाओं को सशक्त बनाना चाहते हैं तो बहुत गंभीरता से महिलाओं के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक सशक्तिकरण को एक प्रक्रिया के तहत समन्वित करना होगा, महिला कल्याण के स्थान पर महिला सहभागिता के लिये कदम उठाने होंगे, जो उन्हें मात्र स्त्री की पारम्परिक भूमिका तक ही सीमित न रखते हों। सवाल यह है कि अगर सरकार 'साक्षरता मिशन, पोलिया मिशन, विज्ञान जागरण तथा तमाम अधिनियमों पर अरबों रूपये खर्च करके व्यापक रूप से आंदोलन चला सला सकती है, तो महिलाओं की समान सहभागिता, हिस्सेदारी, राजनीतिक भागेदारी के लिये बाध्यकारी, कानून क्यों नहीं बनाये जा सकते, राजनीतिक दलों के लिये बाध्यकारी आचार संहिता क्यों नहीं बनायी जा सकती। महिलाओं को विकास की प्रक्रिया में सिर्फ शामिल ही नहीं बल्कि बराबर से शामिल करने की जरूरत है।

वास्तव में 'महिला सशक्तिकरण' महिला मुक्ति के बिना संभव नहीं है, 'महिला मुक्ति एवं महिला सशक्तिकरण का समन्वय करने की आवश्यकता है अधिकार से सशक्तिकरण तथा सशक्तिकरण से मुक्ति का सफर तय करने के लिय रास्तों का निर्माण करने की, जिसके लिये आवश्यक है कि सबसे पहले महिलाओं को उन तमाम तरह के बन्धनों से मुक्त करना जो उनकी गतिशीलता को प्रभावित करते हैं तथा उन्हें बन्धनों में बांधते हैं। जब हम महिलाओं के सशक्तिकरण की बात करते हैं तो उसमें प्रायः उनकी क्षमताओं व योग्यताओं के पहलू तक ही बात सीमित रह जाते हैं, जबकि इसका अहम पहलू यह है कि उनकी उन परिस्थितियों में बदलाव लाया जाये, जहाँ से अपने आपको कमजोर एवं बंधा हुआ पाती हैं क्योंकि अशिक्षित होना जानकारी की कमी होना, रोजगार न मिलना इत्यादि रोड़े अटकाते हैं पर उससे कहीं ज्यादा बाधायें व्यवस्था के, समाज के पुरूष सत्तात्मक ढांचे व सोच से आती है, जिससे महिलाओं को अब मुक्त करने की आवश्यकता है और जब तक इस ओर ध्यान नहीं दिया जायेगा, 'महिला सशक्तिकरण सम्भव नहीं है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. स्टेट जेंडर डेवलपमेंट रिपोर्ट, 2005।
2. केन्द्रीय महिला एंव बाल विकास मंत्रालय की रिपोर्ट 'जेंडरिंग ह्यूमन डेवलपमेंट इंडिसेज रिकास्टिंग द जेंडर डेवलपमेंट इडेक्स एण्ड जेंडर इम्पावरमेंट फॉर इण्डिया 2009।
3. भारत में महिलाओं कि स्थिति (2001), राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण, राष्ट्रीय महिला आयोग, नई दिल्ली।
4. सिन्हा, आर.के. "ह्यूमन राईट ऑफ दी वर्ल्ड", इण्डिय पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स पार्ट – प्रथम।
5. अवतार सिंह, लीडरशिप, पैटर्न एण्ड विलेज स्ट्रक्चर स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1963।
6. स्टुअर्ट, जॉन, 'द सबजेक्शन ऑफ वूमेन',1869।
7. सिमोन द बोउवर, 'द सेकेण्ड सेक्स' 1949।
8. प्रेमलता पुजारी एवं विजय कुमार कौशिक, वुमन पॉवर इन इण्डिया, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1994।
9. के. सी. विद्या, पॉलिटिकल एम्पावरमेंट ऑफ वुमन एट द ग्रासरूट्स, कनिष्ठ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1997।